भारतीय साहित्य का स्त्री विमर्श की दृष्टि से अवलोकन

जगमोहन
शोधार्थी
हिन्दी–विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

स्त्रियाँ सम्पूर्ण विश्व का आधा भाग है। प्रत्येक पुरुष के साथ स्त्री किसी–न–किसी रूप में अवश्य जुड़ी हुई है। पुरुष इससे बच नहीं पाया है। वह रूप चाहे माँ, बहन, प्रिया, बुआ, पत्नी, सास, दादी, बेटी आदि ही क्यों न हो। लेकिन स्त्री दुनिया की आधी आबादी होते हुए भी समाज में अपने मानवीय अधिकारों से वंचित रखी गई। वह हमेशा पुरुषों में उपेक्षा की पात्र ही रही। पुरुष समाज ने उसे केवल भोग–विलास या एक वस्तु के रूप में ही देखा। रामायण में उर्मिला जो उपेक्षा की पात्र रही और महाभारत में द्रौपदी एक वस्तु की पात्र मान कर जुए में दांव पर लगा देना एक सटीक उदाहरण है। लेकिन आज स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हुई है और पुरुष समाज में समानता, स्वतन्त्रता और अस्मिता चाहती है। इन्हें प्राप्त करने के लिए वह बड़े–बड़े आन्दोलन कर रही है, संगठन बना रही है। इनके साथ–साथ समाज का बुद्धिमान पुरुष वर्ग भी चाहता है कि उसे मानवीय होने के अधिकार प्राप्त होने चाहिएं इसलिए वे भी इस कार्य में संघर्षरत हैं। वे चाहते हैं कि स्त्री को पुरुष सत्ता समाज में बराबरी का अधिकार मिले ताकि वह अपने ऊपर होने वाले शोषण से अपना बचाव कर सके। वे चाहते हैं कि स्त्री को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की तरह समानता, स्वतन्त्रता प्राप्त हो वे क्षेत्र चाहे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक ही क्यों न हो। स्त्री के उत्थान के बारे में सोचने का विषय ही स्त्री–विमर्श है।

स्त्री–विमर्श की अवधारणा :

स्त्री–विमर्श का अर्थ साधारण शब्दों में स्त्री को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मुक्ति दिलाना है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हर क्षेत्र में स्त्री स्वयं के लिए सोचने, विचारने, निर्णय लेने का स्वयं अधिकार होना चाहिए।

रोहिणी अग्रवाल जी कहती हैं कि "स्त्री–विमर्श का मूल लक्ष्य है–पितृ–सत्तात्मक व्यवहार का पुनरीक्षण। स्त्री–विमर्श का अर्थ है मानव मुक्ति। मानव मुक्ति में लिंग और वर्ग का कोई भेद नहीं रहता। स्त्री–विमर्श पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा हाशिए पर फैंकी गई स्त्री के सपनों को शब्द देता है। यह बताना चाहता है कि परिवार, विवाह, धर्म, न्याय और मीडिया जैसी संस्थाएँ स्त्री को पराधीन बनाए रखने को अनवरत क्रम चलाए हुए हैं कि स्त्रीमोचित गुण असल में मनोचित गुण है, जिन्हें स्त्री–पुरुष दोनों को अख्जत करना चाहिए, कि अपनी आधारभूत संरचना में स्त्री भी उतनी ही मानवीय, संवेदनशील, विवेकशील और स्वप्नशील है जितना पुरुष।"[1]

स्त्रीमुक्ति आन्दोलन भारत में पाश्चात्य देशों की देन है। अमेरिका, युरोप, रूस आदि देशों की स्त्री हमारे देश से पहले पुरुषों से आजाद हो चुकी थी। हमारे देश में तो स्त्री घर की चारदीवारी में कैद रहती थी। लेकिन स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए पुरुषों ने उनसे घर की दहलीज़ लंघवाई तो स्त्री ने पहली बार स्वतन्त्रता की सांस ली।

वैसे तो भारतीय इतिहास में स्त्री मुक्ति के शुरुआत के पुख्ता प्रमाण नहीं मिलते, लेकिन राजा राममोहन राय, ज्योतिराव फूले, सावित्री बाई फूले, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, ईश्वर चन्द्र, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों ने स्त्री दशा को

सुधारने के लिए अनेक आन्दोलन चलाए। स्वतन्त्रता संग्राम में स्त्री–पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर रही। लेकिन वह सेनानी कम सहयोगी ज्यादा थी।

मुख्य रूप से स्त्री–विमर्श "सन् 1960 से सन् 1975 के समय में उभर कर सामने आया। यह समय देश विदेश में स्त्री मुक्ति आन्दोलनों का समय रहा है। 1975 में पहली बार 'महिला वर्ष' मनाया गया। भारत में स्त्री मुक्ति आन्दोलन युरोप के 'वुमेन लिव मूवमैंट' की देन थे। जिसके सामाजिक प्रभावों को समाज और साहित्य में 'स्त्री–विमर्श' के रूप में पहचान मिली। हिन्दी के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्री–मुक्ति की अवधारणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किए हैं, वे स्त्री–विमर्श के अन्तर्गत आते हैं। महिला लेखिकाओं ने स्त्री मन को अपनी रचनाओं में प्रामाणिक ढंग से उभारने का प्रयास किया है।"[2]

भारतीय साहित्य में स्त्री :

स्त्री शोषण की धार्मिक पृष्ठभूमि :

प्रत्येक समाज का आधार स्तम्भ उसका धर्म होता है और प्रत्येक सामाजिक प्राणी उससे बंधा होता है। ये **धार्मिक** आस्था उसके मन में विभिन्न प्रकार की धारणाएँ उत्पन्न करती हैं। इस **धार्मिक** आस्था को बनाए रखने के लिए समाज के पुरुष ठेकेदारों ने अनेक ग्रन्थों/शास्त्रों का निर्माण करवाया है। जिनके आधार पर सामाजिक प्रक्रिया चलती है। इन **धार्मिक** कहे जाने वाले ग्रन्थों व शास्त्रों ने वैदिककाल से ही स्त्री व शूद्रों को हीन बनाए रखने का कार्य किया है। इन ग्रन्थों व शास्त्रों ने हमेशा ही स्त्री व शूद्रों के स्वभाव पर प्रश्नचिह्न लगाकर उनको वर्षों से अधिकार हीन बनाया है। जिसके कारण ये दोनों वर्ग वर्षों से मानवीय अधिकारों से वंचित रहे हैं।

ये शास्त्र स्त्री को देवी के स्थान पर बैठाकर उसके सारे मानवीय अधिकार छीनने का मात्र एक साधन है। देवी भी ये उस स्त्री को मानते हैं जो पितृसत्ता की बेड़ियों में जकड़कर तिल–तिल जीती–मरती है। इनके खिलाफ विद्रोह करने पर उसी स्त्री को कुलटा, कुलक्षणी तथा बेहया तक की उपाधि दे दी जाती है। समाज में फैली स्त्रियों के लिए अमानवीय प्रथाएँ (घरेलू हिंसा, सती–प्रथा, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दासी दान–प्रथा, भ्रूण हत्या) के जिम्मेवार भी यही धर्म ग्रन्थ व शास्त्र हैं। क्योंकि ये सभी ग्रन्थ पुरुषों द्वारा स्त्री को अपने वश में रखने व सामाजिक प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए लिखे गए हैं। एक भी ग्रन्थ या शास्त्र स्त्री लिखित नहीं है। इन धर्म–ग्रन्थों ने पितृसत्ता के विरोधी स्त्री पर कीचड़ उछालने के लिए हमेशा ही उसके स्वभाव पर प्रहार किया है। ताकि समाज की मानसिकता हमेशा स्त्री को अधिकार देने के विरुद्ध बने रहे और इन्हीं के आधार पर स्त्री का शोषण वैदिक युग से अब तक प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से होता रहा है।

"ऋग्वेद में वर्णित 27 विदूषी स्त्रियों की बात करें तो वे स्त्रियाँ कोई नई सामाजिक खोज, दर्शन आदि को प्रस्तुत नहीं कर रही है, वे अपने अधिकारों की अपेक्षा लगभग अपने पति व परिवार की सुख–समृद्धि के लिए मन्त्र जाप कर रही हैं।"[3] लेकिन यही वेद शास्त्र स्त्री के स्वभाव के बारे में कहता है कि "स्त्री का हृदय तो भेड़िये के समान होता है"[4] तथा स्त्री को कुशा से पीटने तथा शोर न करने की भी प्रेरणा देता है। यानि स्त्री वैदिककाल में भी घरेलू हिंसा की शिकार रहती थी। वहीं वेद पुत्री के जन्म को अशुभ मानता है। अर्थात् लिंगभेद व बालिका हत्या का आरम्भ भी वैदिककाल से हुआ है।

पुराणों में भी बालविवाह, सती प्रथा के लिए स्त्री को उकसाना, भ्रूण हत्या की समस्या, पुत्र महत्त्व आदि के उदाहरण गरूड़ पुराण, शिव पुराण आदि में स्पष्ट रूप से देखे

जाते हैं जो स्त्री के स्वभाव विरोधी बातों से भरे पड़े हैं। स्त्रियों को सिर्फ एक स्वर्ग का लालच देकर सती होने के लिए उकसाना[5] तथा सिर्फ पुत्र रत्न द्वारा ही पिता के लिए स्वर्ग के द्वार खोलने की धारणा बनाना,[6] इन महान् पुराणों का ही कार्य है। जिनके कारण समाज में सती प्रथा को बढ़ावा मिला, पुत्र महत्त्व के कारण बालिका हत्याएँ आरम्भ हुईं।

आज हमारे समाज के सामने जो दहेज की महाभयंकर समस्या मुँह बाये खड़ी है उसका श्रेय भी धार्मिक कहे जाने वाले ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण' को ही जाता है। क्योंकि रामायण से पहले के किसी भी शास्त्र या ग्रन्थ में कन्या विवाह अवसर पर कन्यादान देने के प्रमाण नहीं मिलता। आज वही कन्यादान दहेज की महाभयंकर बीमारी बन गया है, जो स्त्री व उसके माता–पिता के लिए पुत्री जन्म ही दुखदायक होने लगा और जन्म के समय ही बच्चियों की हत्या कर दी जाने लगीं या सीता की तरह लड़की पैदा होने पर जंगल में छोड़ देनी पड़ी। दास–दासियों को दान में देने की प्रथा का आरम्भ भी वाल्मीकि रामायण से ही माना जाता है, क्योंकि जनक ने अनेक दास–दासी कन्यादान स्वरूप राम को भेंट किए थे। वहीं मंथरा जो कैकेयी की दासी थी वह उसके साथ उसके पिता के यहाँ से आई थी"[7]

डॉ. श्याम बिहारी पाठक के अनुसार, " आधुनिक साहित्य की नारी–सम्बद्ध कतिपय समस्याओं का मूल रूप रामायण में पाया जाता है। जैसे दास–दासी प्रथा, कन्यादान (दहेज) प्रथा, पर्दा प्रथा आदि।"[8]

स्त्री स्वभाव को प्रकट करने में महाभारत तथा गीता भी पीछे नहीं रही हैं, क्योंकि इस काल में स्त्री में नम्रता, सेवा, क्षमा, त्याग, पति–परायणता, अंध आज्ञापालन आदि दैविक गुणों का होना आवश्यक माना जाता था।

महाभारत में "स्त्री को छुरे की धार, विष, साँप और आग से भी ज्यादा खतरनाक मानता है तथा स्त्रियों को ही हर बुराई की जड़ मानता है।"[9] वही **श्रीमद्भगवद्गीता** तो स्त्री को पाप योनि तक कहता है। जिस स्त्री से सारे संसार की उत्पत्ति हुई उसी को गीता पाप योनि घोषित करती है।

तुलसीदास ने भी '**रामचरितमानस**' में भी स्त्रियों के स्वभाव पर अनेक कटाक्षपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिसके कारण भी स्त्री समाज में शोषण की शिकार बनती गईं। रामचरितमानस स्त्री को सभी अवगुणों की खान मानता है तो कहीं उसे ढोल, गँवार, शुद्र और पशु की तरह पीटने का अधिकार देता है। तो कहीं स्त्री के स्वभाव पर ऐसे लज्जाजनक लांछन लगाता है कि "स्त्री स्वभावगत भाई, पिता, पुत्र तथा कोई भी सुन्दर पुरुष ही क्यों न हों, को देखकर वह कामावेश में विकल जाती है। जैसे सूर्यकांत मणि सूर्य को देखकर पिघल जाती हैं।"[10] यहाँ तुलसी दास ने स्त्री के पिता, पुत्र, भाई के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की बात कहकर मनु की बात का समर्थन किया है, जिन्होंने पिता, भाई, पुत्र को स्त्री के पास घर–परिवार में भी समीप बैठने की मनाही की है।

रामचरितमानस उसी स्त्री को देवी रूपा मानता है जो स्त्री पति की अंधाज्ञापालन, अंध सेवाभक्ति, बिना किसी आपत्ति के करती रहे।

स्मृति काल तो स्त्रियों के लिए सबसे ज्यादा दुर्गति का काल रहा है। जहाँ स्त्रियों को पहले कुछ सामान्य अधिकार प्राप्त थे। लेकिन स्मृति काल में मनु ने स्त्री से सारे अधिकार छीन कर पुरुषों को दे दिए। स्त्री का जीवन तो बंधे हुए पशु के समान हो गया था। स्मृति काल में महाराजा मनु व पराशर मुनि आदि ने ऐसी स्मृति ग्रन्थ लिखे जो समाज के लिए संविधान का काम 2500 वर्षों तक करते रहे तथा अप्रत्यक्ष रूप से आज भी कर रहे

हैं। इन स्मृतिकारों ने स्त्री को प्रत्येक अधिकारों से वंचित कर दिया, चाहे वे अधिकार आख्थक, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय या किसी अन्य प्रकार का अधिकार ही क्यों न हो। स्त्री केवल उन अधिकारों को पुरुष के साथ जुड़कर ही प्राप्त कर सकती थी। उसके अकेले का कोई अस्तित्व नहीं था। अर्थात् स्त्री को एक मानव के पद से हटा कर एक पशु के पद पर बैठा दिया।

कह सकते हैं कि प्रत्येक धाख्मक ग्रन्थों व शास्त्रों का कार्य स्त्री का स्वभाव से अपवित्र, कुलटा, कुलछणी तथा अवगुणों की खान घोषित कर समाज में उनके प्रति गलत धारणाएँ फैलाना रहा। अपवाद स्वरूप पितृसत्ता को मानने वाली, पति की अंध आज्ञापालन करने वाली स्त्री को महत्त्व भी देती हैं। इन्हीं स्वभाव विरोधी धारणाओं के कारण स्त्री सदियों से अपने मानवीय अधिकारों को पाने से वंचित रही। ऐसा एक भी धर्म ग्रन्थ या शास्त्र नहीं है जो स्त्री द्वारा लिखित तथा स्त्री के अधिकारों की बात करता हो। धार्मिक शोषणता के कारण ही समाज में स्त्री के प्रति फैली अमानवीय प्रथाओं (पुत्र–महत्त्व, लिंग भेद, सती प्रथा, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या, बाल–विवाह) को फलने फूलने को अत्याधिक बढ़ावा मिला है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री :

मध्यकाल से पूर्व के साहित्य में लगभग स्त्री के स्वभाव को वर्णित करके उसे अधिकार विहीन दिखाया गया है, लेकिन मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री के रूप सौन्दर्य तथा नख–शिख का वर्णन किया गया है। स्त्री के रूप सौन्दर्य को देखकर या सुनकर बड़े–बड़े राजा–महाराजा उसे प्राप्त करने के लिए युद्ध छेड़ देते थे। बहुत से व्यक्ति बिना किसी कारण ही मारे जाते थे। अतः आदिकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री 'भोग्य' एवं 'तलवार' के बल पर अधिकार की हुई वस्तु मात्र रही है। कभी–कभी हारता हुआ राजा उस स्त्री को न प्राप्त कर पाने के कारण उसका वध भी कर देता था।

इस काल में स्त्री के पत्नीव्रता होने के भी प्रमाण मिलते हैं, जिनके अनुसार पति की मृत्यु के बाद पत्नी जौहर या सती हो जाना अपना कर्त्तव्य समझती थी। "इस काल का रासो काव्य स्त्री भोग विलास तथा शृंगार भावना से परिपूर्ण था। इस काल का काव्य स्त्री भोग–विलास, नख–शिख वर्णन, स्त्री अपहरण आदि चित्रों से भरा पड़ा है।"[11]

इस काल में सिद्ध, नाथ तथा जैन साहित्य में भी स्त्री की बुरी दुर्दशा का वर्णन मिलता है। सिद्ध कवि सिद्धि प्राप्ति हेतु स्त्री भोग के पक्षधर थे।

नाथ कवियों ने स्त्री को माया का रूप मानकर उसका तिरस्कार किया। जैन साहित्य स्त्री के प्रति कुछ सहानुभूति जरूर दिखाता है, लेकिन यहाँ भी "स्त्री योनि में जन्म लेना दुर्भाग्य माना जाता था।"[12]

निष्कर्षतः इस काल में सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जौहर प्रथा तथा अपहरण जैसी कुरीतियाँ समाज में प्रचलित थीं।

आदिकाल के बाद के युग को भले ही 'स्वर्ण युग' कहा जाता हो, लेकिन इस काल में भी स्त्री की स्थिति में कुछ ज्यादा सुधार नहीं हो पाया था। इस भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण भक्ति की दो धाराएँ रहीं और इनमें भी सगुण और निर्गुण की दो–दो धाराएँ प्रचलित रही थीं।

जहाँ सन्त कवियों ने स्त्री को साधना में बाधा मानते हुए उसकी निंदा की और उसे माया का प्रतीक मानकर ठगिनी घोषित कर दिया। सन्त कवि तो "पुरुष को उसकी छाया से बचने का निर्देश देते हैं।"[13]

सूफियों ने उसे ब्रह्मा का प्रतीक माना जिससे उसका गौरव बढ़ा। लेकिन राम भक्ति शाखा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि माने जाने वाले महाकवि 'तुलसीदास' ने उसे "ढोल, गँवार, शुद्र और पशु की तरह पीटने का अधिकारी मान कर उसकी निंदा की।"[14]

इस कारण इस काल में स्त्री पर अत्याचार बढ़ गए थे। लड़की के जन्म लेने पर उसको या तो मार दिया जाता था या कहीं जंगल में सीता की तरह छोड़ दिया जाता था। लड़की जन्म का सारा दोष माँ पर ही लगाया जाता था। वेश्यावृत्ति समाज में फैली हुई थी, क्योंकि समाज में विधवा विवाह पर रोक थी। बाल–विवाह होने के कारण पति की मृत्यु के बाद विधवाओं को घर से निकाल दिया जाता था और पेट भरने के लिए उन्हें मज़बूरीवश वेश्यावृत्ति का धंधा अपनाना पड़ता था। अतः इस काल में भी स्त्री की दशा सोचनीय बनी हुई थी।

रीतिकालीन साहित्य में तो स्त्री बहुत ज्यादा दुर्गति हुई। इस काल के कवियों ने स्त्री के माँ–बहन, बेटी, बहू आदि आदर्श रूपों को भूलकर केवल प्रेयसी रूप का ही वर्णन किया है। इन कवियों ने स्त्री को अपनी काव्य रचनाओं में निर्वस्त्र तक कर दिया है। प्रेमानुभूति से परिपूर्ण साहित्य में स्त्री वियोग की ज्वाला का चित्रण भी इस काल में मिलता है। इस काल में स्त्री मात्र बिस्तर की वस्तु व मनोरंजन का साधन समझी जाती थी। इस काल के कवि स्त्री विषयक अश्लील काव्य राजा को सुनाकर मुँह मांगा ईनाम पाते थे। रहीम, वृंद, गिरधर, कविराय आदि कवियों ने नीतिपरक काव्य लिखे, लेकिन इन्होंने भी भवसागर से पार उतरने में स्त्री को बाधा माना है।

आधुनिक काल यर्थाथवादी काल रहा है। इस काल में स्त्री की यथार्थ स्थिति को दिखाया गया है, जिससे स्त्री की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ। इसलिए इस काल को 'पुनर्जागरण' का काल कहा जाता है। इस काल में स्त्री चेतना पर ज्यादा ध्यान दिया गया। समाज सुधारकों तथा अंग्रेजों ने मिलकर स्त्री स्थिति को सुधारने के लिए जागरूक अभियान तथा कन्या स्कूल खोले। उनका मानना था कि स्त्री के अशिक्षित होने के कारण दीन–हीन व शोषण का होना पड़ा। इसलिए स्त्री सुधार के लिए अनेक कानून भी बनाए गए। सती प्रथा पर रोक, विधवा पुर्नविवाह के कानूनी अधिकारों से स्त्री की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ।

भारतेन्दु जी स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा हेतु 'बालबोधिन' पत्रिका निकाली तथा उन्होंने स्वयं लड़कियों के लिए 'हरिश्चन्द्र कन्या विद्यालय' बनारस में बनवाया। उन्होंने अपने साहित्यकार मण्डल में भी स्त्रियों को ऊँचा उठाने वाली रचनाओं को लिखने के लिए प्रेरित किया।

ये सभी साहित्यकार 'विधवा विवाह' के समर्थक तो थे ही साथ ही साथ अनमेल विवाह, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों का भी विरोध करते थे। इस काल में साहित्यकारों ने स्त्री शिक्षा, समानता आदि अनेक कुरीतियों पर प्रभाव डाल कर स्त्री स्वतन्त्रता का प्रथम शंखनाद किया। स्त्री के लिए यह काल आजादी का प्रथम द्वार कहा जा सकता है। अतः इस काल में स्त्री की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ।

द्विवेदी कालीन साहित्य स्त्री के लिए सहानुभूति का काल रहा है। उन्होंने स्त्री मन के भावों को बड़ी सहजता से काव्य में उतारकर उपेक्षित पात्रों को भी समाज में सम्मान व अधिकार दिलाने का प्रथम प्रयास किया। इस काल में स्त्री को केन्द्र में रखकर रचनाएँ लिखी गईं। जहाँ 'साकेत' में गुप्त जी ने युगों–युगों से उपेक्षित उर्मिला के दर्द को दिखाया है, वहीं 'यशोधरा' में यशोधरा को केन्द्र में रखकर उसके दुःख–दर्द को दिखाया है। अतः "यह काल स्त्री जागरण का काल था और स्त्री के प्रति उदारता के भाव को दर्शाता है। इस काल में कुछ महिला लेखिकाओं ने भी नाम बदलकर अपनी रचनाएँ समाज के सामने रखीं।"[15] इस युग में स्त्री शिक्षा पर जोर दिया गया तथा पर्दा प्रथा का विरोध किया गया।

छायावादी साहित्यकारों ने जहाँ स्त्री की दीन–हीन दशा का, स्त्री के भोग्य रूप का, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, स्त्री–शिक्षा के अभाव तथा विधवा जीवन का विरोध किया, वहीं दूसरी तरफ उसके उत्थान के लिए देवी, माँ आदि का भी आदर प्रदान किया। इस काल में सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, निराला व पन्त जी ने स्त्री अनुभूति के दर्द को तथा स्त्री को पुरुष स्वतन्त्रता, समानता दिलाने का प्रयास किया।

"1960 के बाद में महिला लेखिकाओं ने अपने दर्द को काव्य में उतार कर समाज को अपने अधिकार लेने के लिए जागरूक किया। सामाजिक चेतना के कारण जहाँ पत्रिकाओं ने खेतिहर मजदूर, श्रमिक या युवाओं की समस्याओं को उठाया था, वह विमर्श परवर्ती पत्रिकाओं में या तो स्त्री या दलित की ओर मुड़ता गया या नये–नये प्रयोगों के साथ नयी पीढ़ी को जोड़ने और उसकी तकदीर बदलने में लगा रहा। कालांतर में विमर्श की यही प्रवृत्ति मुख्यधारा बन गयी। सारी पत्रिकाएँ या तो स्त्री–विमर्श के पन्ने खोलती रही या दलित विमर्श के या फिर प्रयोगों और विवादों में उलझी रहीं।"[16]

स्त्री विमर्श पर अनेक पत्र–पत्रिकाओं के विशेषांक निकाले। स्त्री–विमर्श पर धड़ाधड़ सेमिनार, आन्दोलन व नाटकों से समाज को स्त्री के सम्मान व अधिकारों के लिए हिन्दी साहित्य जागरूक कर रहा है।

निष्कर्षतः हमारे धर्म ग्रन्थों में स्त्री को अधिकारहीन करने व उनको अपमानित करने के लिए उनके स्वभाव पर लांछन लगाते हैं। वे स्त्री के पितृसत्ता की गुलामी को मानने वाले रूप का ही सम्मान करते हैं। उस सम्मान को पाने के लिए स्त्री को अनेक भयंकर कठिनाइयों तथा अनेक मानवीय–अमानवीय शोषण को सहना पड़ता है। वहीं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य स्त्री के स्वभाव की अपेक्षा उसके रूप सौन्दर्य तथा नख–शिख को ज्यादा महत्त्व देता है, जिसके कारण स्त्री गुलाम का जीवन जीने को मजबूर रही। उसी की वजह से बड़े–बड़े भयानक युद्ध हुए, साथ–साथ समाज में कुरूप स्त्रियों की भी बुरी दुर्दशा का कारण भी बनीं। मध्यकाल का हिन्दी साहित्य उसके सौन्दर्य, भक्ति में बाधा के पड़ावों को पार करता हुआ स्त्री में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करते हुए उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी करता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य स्त्री की पुरुष समानता, स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा के अधिकारों के प्रति स्त्री व समाज को जागरूक करता है।

संदर्भ :

1. हरिगंधा, पत्रिका, अक्टूबर 2008, पृ॰ 63
2. बयान पत्रिका, अंक 70, मई 2012, पृ॰ 44
3. नीलम कुल श्रेष्ठ, परत दर परत स्त्री, पृ॰ 8
4. व्याख्याकार पं॰ ईश्वरचन्द, कन्हैयालाल जोशी, ऋग्वेद संहिता 10वां मंडल 95/15
5. गरुड पुराण, अध्याय आठवां
6. वही, अध्याय सातवाँ
7. वाल्मीकि, रामायण, 7/29/10
8. डॉ॰ श्याम बिहारी पाठक, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ॰ 87
9. महाभारत, अनुशासन पर्व
10. रामचरित मानस, तुलसीदास, अरण्यकांड, 17/5–6, पृ॰ 520
11. डॉ॰ नामवर सिंह, हिन्दी साहित्य के विकास में अपभ्रंश का योगदान, पृ॰ 57
12. डॉ॰ विवेक शंकर, स्त्री अस्मिता के प्रश्न और प्रेमचन्द, पृ॰ 28
13. डॉ॰ पुष्पाल सिंह, कबीर ग्रंथावली, कामी नारी को अंग, पृ॰ 11
14. तुलसीदास, राम चरित मानस, सुन्दरकांड, 58/3, पृ॰ 608
15. उषा झा, हिन्दी कहानी और स्त्री–विमर्श, पृ॰ 48
16. नया पथ, अंक अक्तूबर–दिसम्बर 2011, पृ॰ 215